मङ्गल प्रज्ञा

भाग: 3

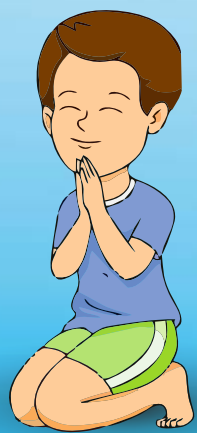

प्रकाशक:
मङ्गल
विद्यापीठ
तीर्थधाम मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-२०४२१६ (अलीगढ़) उत्तरप्रदेश

ॐ

॥ नमः श्री सिद्धेभ्यः ॥

मंगल प्रज्ञा

(तृतीय भाग)

प्रकाशक :

मङ्गल विद्यापीठ

तीर्थधाम मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट

सासनी - 204216, हाथरस (उत्तरप्रदेश) भारत

mob. : 91-8191900042, e-mail : mangalvidyapeeth@gmail.com

हमारे जीवनशिल्पी
धर्मपिता
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के कर-कमलों में
सविनय समर्पित!

हम हैं आपके,
नन्हें-मुन्नें ज्ञायक

प्रस्तावना

जैनदर्शन में तीर्थंकर, धर्म के संस्थापक नहीं होते, वे तो प्रवर्तक होते हैं, प्रचारक होते हैं।

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर, शासननायक भगवान महावीर तक यह प्रवाह निरंतर चलता रहा। महावीर भगवान के निर्वाण होने के पश्चात् कुछ केवलियों और श्रुतकेवलियों ने इसी शृंखला को आगे बढाया। विशेष ज्ञानियों का अभाव होने पर, मुनि परंपरा में यह विकल्प हुआ कि पंचम काल के अंतपर्यंत यदि जिनशासन को सुरक्षित करना है, तो सत्यमार्ग को जन-जन तक पहुँचाना होगा और इसके लिए जिनागम को लिपिबद्ध करना होगा। इसीलिए पुष्पदन्ताचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य आदि वीतरागी महर्षियों ने समय-समय पर वीतरागता के पोषक ग्रन्थों के लेखन का दुरूह कार्य किया।

काल के ओघ से जब यह वाणी, मंदबुद्धियों को समझने में दुर्गम हुई, तब उन ग्रन्थों की टीकाएँ लिखी गयीं। वीतरागी संतों का भी विरह-सा होता देखकर, कविवर पण्डित बनारसीदासजी, आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी जैसे समर्थ विद्वानों ने उन टीकाओं का सरलीकरण किया। इसे भी सरल-सुगम करने हेतु आज के परिप्रेक्ष्य में गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने सरलतम शब्दों में 45 वर्षों तक लगातार अमृतवर्षा की, जिससे प्रेरित होकर आज हजारों विद्वानों की सृष्टि हुई। हमारे ऊपर इन सबके अनंत उपकार हैं।

मङ्गल विद्यापीठ को यह विकल्प आया कि विद्वानों का योग सबको हो, यह जरूरी नहीं है। आज विषयों की अन्धी भाग-दौड़ के इस काल में समय की अनुकूलता मिलना दुर्लभ है। बीमारी आदि से ग्रस्त होने के कारण भी साधारणजन शास्त्र-सभाओं में जाकर, स्वाध्याय का लाभ नहीं ले सकते।

किसी सुयोग से स्वाध्याय के समय की अनुकूलता भी हो तथा स्वास्थ्य भी ठीक हो, पर चारों अनुयोग के ज्ञाता विद्वान की प्राप्ति दुर्लभ है।

मङ्गल विद्यापीठ ने निर्णय किया कि ऐसा कोई सर्वजनहिताय उपक्रम प्रारम्भ किया जाए; जिसमें लघु वय से ही मुमुक्षुता को योग्य पोषण मिलता रहे। देश-विदेश के किसी भी कोने में बैठकर, कोई भी उपासक, समस्त विषयों का सांगोपांग अध्ययन कर सके और उसकी समय-समय पर परीक्षा भी होती रहे। परीक्षा के लिए लिखित या On-Line का भी विकल्प रहे। साथ-साथ समय-समय पर श्रोताओं की जिज्ञासानुसार, नियमित अथवा प्रासंगिक कक्षाओं का Video Conference द्वारा भी आयोजन हो।

मङ्गल विद्यापीठ का यह भी भाव है कि एक **'मङ्गल जिज्ञासा'** उपक्रम चले, जिसमें समय-समय पर श्रोताओं से प्रश्न पूछे जाएँ और उत्तरदाताओं को पुरस्कृत भी किया जाए। साथ ही एक **'मङ्गल समाधान'** उपक्रम चले, जिसमें श्रोताओं की जिज्ञासाओं का तत्काल समाधान मिलने का यह केन्द्रबिंदु बने, जिसमें किसी भी अनुयोग की शंकाओं का निराकरण, आगम तथा युक्ति से हमारी विद्वत् मंडली के सदस्यों द्वारा किया जाए। हम चाहते हैं कि ज्ञान के प्रचार-प्रसार के अभियान के इस यज्ञ में आप भी हमारे सहभागी बनें।

इन भागों को बनाने में हमने पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर आदि संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का सहयोग लिया है। हम उसके लिए सभी के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
	दर्शन स्तुति	1
1	देव-दर्शन	2
2	पंच परमेष्ठी	5
3	जैन गृहस्थ के अष्ट मूलगुण	10
4	इन्द्रियाँ	15
5	भक्ष्य-अभक्ष्य	21
6	अर्थ (वस्तु)-व्यवस्था	23
7	तीर्थंकर नेमिनाथ	24
8	जिनवाणी स्तुति	28

दर्शन स्तुति

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी॥

तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी॥

भव-विकट-वन में कर्म बैरी, ज्ञान धन मेरो हर्यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्यो॥

धन घड़ी यो धन दिवस यों ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु जी को लख लयो॥

छवि वीतरागी नग्नमुद्रा, दृष्टि नाशा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण-युत, कोटि रवि छवि को हरैं॥

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिन्तामणि लयो॥

मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तुव चरन जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहुँ तारन तरन जी॥

जाचूँ नहीं सुरवास, पुनि नरराज, परिजन साथ जी।
'बुध' जाँचहूँ तुव भक्ति भव-भव दीजिए शिवनाथ जी॥

पाठ 1

देव-दर्शन

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने॥

पाये अनंते दु:ख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचानकर॥

अज्ञानदशा

भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज-पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि-सुधा नहिं पान कर॥1॥

तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी॥

रुचि लगी हित में आत्म के, सतसंग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रँगा॥

ज्ञानदशा

प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गान में ही चित पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतैं भगै॥2॥

कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर॥

धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करूँ॥

तप तपूँ द्वादश विधि सुखद, नित बंध आस्रव परिहरूँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपु को निर्जरूँ॥3॥

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ॥
कर दूर रागादिक निरन्तर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ॥
आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुखद भवसागर तरूँ॥4॥

देव-दर्शन का सारांश

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो! महान पुण्योदय से आज मैंने आपके दर्शन प्राप्त किए हैं। आज तक आपको जाने बिना और अपने गुणों को पहिचाने बिना, मैंने अनन्त दु:ख पाए हैं।

मैंने इस संसार को अपना जानकर और सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहे गए, आत्मा का हित करनेवाले वीतरागधर्म को पहिचाने बिना, अनन्त दु:ख प्राप्त किए हैं। आज तक मैंने संसार बढ़ानेवाले और सच्चे सुख का नाश करनेवाले, पंचेन्द्रिय के विषयों में सुख मानकर, सुख के खजाने स्वपर -भेदविज्ञानरूप अमृत का पान नहीं किया है॥1॥

आज आपके चरण, मेरे हृदय में बसे हैं, उन्हें देखकर कुबुद्धि और मोह भाग गए हैं। आत्मज्ञान की कला हृदय में जागृत हो गई है और मेरी रुचि, आत्महित में लग गई है। सत्समागम में मेरा मन लगने लगा है; अत: मेरे मन में यह भावना जागृत हो गई है कि आपकी भक्ति ही में रमा रहूँ।

हे भगवन! यदि वचन बोलूँ तो आत्महित करनेवाले प्रिय वचन ही बोलूँ। मेरा चित्त, गुणीजनों के गान में ही रहे अथवा आत्महित के निरूपक शास्त्रों के

अभ्यास में लगा रहे। मेरा मन, दोषों के चिन्तन और वाणी, दोषों के कथन से दूर रहे ॥2॥

मेरे मन में ये भाव जग रहे हैं कि—वह दिन कब आयेगा, जब मैं हृदय में समताभाव धारण करके, बारह भावनाओं का चिन्तन करके तथा ममतारूपी भूत (पिशाच) को भगाकर, वन में जाकर, मुनि-दीक्षा धारण करूँगा। वह दिन कब आएगा जब मैं दिगम्बर वेश धारण करके, अट्ठाईस मूलगुण धारण करूँगा, बाईस परीषहों पर विजय प्राप्त करूँगा और दश धर्मों को धारण करूँगा, सुख देनेवाले बारह प्रकार के तप तपूँगा और आस्रव और बन्ध भावों को त्याग, नवीन कर्मों को रोककर, संचित कर्मों की निर्जरा कर दूँगा ॥3॥

वह धन्य घड़ी कब होगी, जब मैं अपने में ही रम जाऊँगा। कर्ता-कर्म के भेद का भी अभाव करता हुआ, राग-द्वेष दूर करूँगा और आत्मा को पवित्र बना लूँगा, जिससे आत्मा में क्षायिकचारित्र प्रगट करके, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य से युक्त हो जाऊँगा। आनन्दकन्द जिनेन्द्रपद प्राप्त कर लूँगा। मेरा वह दिन कब आएगा, जब इस दुःखरूपी भवसागर को पार कर, अमर पद प्राप्त करूँगा ॥4॥

उक्त स्तुति में देव-दर्शन से लेकर देव (भगवान) बनने तक की भावना आई है और भक्त से भगवान बनने की पूरी प्रक्रिया भी आ गई है।

प्रश्न —

1. उक्त स्तुति में कोई भी एक छन्द, जो तुम्हें रुचिकर हुआ हो, अर्थसहित लिखिए एवं रुचिकर होने का कारण भी दीजिए।

पाठ 2

पंच परमेष्ठी

णमो *अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं॥

गृहस्थपना त्यागकर मुनिदीक्षा अंगीकार करने के लिए उद्यत होनहार जीव

यह पंच **नमस्कारमन्त्र** है। इसमें सबसे पहले पूर्ण वीतरागी और पूर्ण ज्ञानी, अरहन्त भगवन्तों को और सिद्ध भगवन्तों को नमन किया गया है। उसके बाद वीतरागमार्ग में चलनेवाले मुनिराजों को नमन किया गया है; जिनमें आचार्य मुनिराज, उपाध्याय मुनिराज और सामान्य मुनिराज, सभी आ जाते हैं।

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इनको पंच परमेष्ठी कहते हैं। अरहन्तादि परमपद हैं और जो परमपद में स्थित हों, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। पाँच होने से, उन्हें पंच परमेष्ठी कहते हैं।

अरहन्त

जो गृहस्थपना त्यागकर, मुनिधर्म अंगीकार कर, निज स्वभाव साधन द्वारा, चार घातिकर्मों का क्षय करके, अनन्त चतुष्टय (अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य) रूप विराजमान हुए, वे अरहन्त हैं।

शास्त्रों में अरहन्त के 46 गुणों (विशेषणों) का वर्णन है। उनमें कुछ विशेषण

* धवल में अरिहंताणं व अरहंताणं, दोनों ही का प्रयोग हुआ है।

तो शरीर से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ आत्मा से। 46(छ्यालीस) गुणों में दस तो जन्म के अतिशय हैं, जो शरीर से सम्बन्ध रखते हैं। दस, केवलज्ञान के अतिशय हैं, वे भी बाह्य पुण्यसामग्री से सम्बन्धित हैं तथा चौदह, देवकृत अतिशय तो देवों द्वारा किए हुए हैं ही। ये सब, तीर्थंकर अरहन्तों के ही होते हैं, सब अरहन्तों के नहीं। आठ प्रातिहार्य भी बाह्य-विभूति हैं; किन्तु अनन्त चतुष्टय आत्मा से सम्बन्ध रखते हैं; अतः वे प्रत्येक अरहन्त के होते हैं।

सिद्ध

जो गृहस्थ अवस्था का त्यागकर, मुनिधर्म साधन द्वारा, चार घातिकर्मों का नाश होने पर, अनन्त चतुष्टय प्रकट करके, कुछ समय बाद, अघातिकर्मों का नाश होने पर, समस्त अन्य द्रव्यों का सम्बन्ध छूट जाने पर, पूर्ण मुक्त हो गए हैं; लोक के अग्रभाग में किंचित् न्यून पुरुषाकार विराजमान हो गए हैं; जिनके द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने से, समस्त आत्मिक गुण प्रकट हो गए हैं, वे सिद्ध हैं। सिद्ध परमात्मा के आठ गुण कहे गए हैं—

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहना।
सूक्षम वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के॥

1. क्षायिकसम्यक्त्व, 2. अनन्त दर्शन, 3. अनन्त ज्ञान, 4. अगुरुलघुत्व, 5. अवगाहनत्व, 6. सूक्ष्मत्व, 7. अनन्त वीर्य और 8. अव्याबाधत्व

आचार्य, उपाध्याय और साधुओं का सामान्य स्वरूप

आचार्य, उपाध्याय और साधु, सामान्य से साधुओं में ही आ जाते हैं।

जो विरागी होकर, समस्त परिग्रह का त्याग करके, शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके, अन्तरंग में शुद्धोपयोग द्वारा अपने को आपरूप अनुभव करते हैं; अपने उपयोग को बहुत नहीं भ्रमाते हैं। जिनके कदाचित् मन्दराग के उदय में शुभोपयोग भी होता है; परन्तु उसे भी हेय मानते हैं। तीव्र कषाय का अभाव होने से, अशुभोपयोग का तो अस्तित्व ही नहीं रहा है—ऐसे मुनिराज ही सच्चे साधु परमेष्ठी हैं।

आचार्य

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की अधिकता से, प्रधान पद प्राप्त करके, मुनिसंघ के नायक हुए हैं तथा जो मुख्यपने तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण में ही मग्न रहते हैं, पर कभी-कभी रागांश के उदय से, करुणाबुद्धि हो तो धर्म के लोभी अन्य जीवों को धर्मोपदेश देते हैं; दीक्षा लेनेवाले को योग्य जान, दीक्षा देते हैं; अपने दोष प्रकट करनेवाले को, प्रायश्चित्त विधि से शुद्ध करते हैं—ऐसा आचरण करने और करानेवाले आचार्य कहलाते हैं।

आचार्यों के 12 तप, 10 धर्म, 5 आचार, 6 आवश्यक और 3 गुप्ति — इस प्रकार 36 गुण होते हैं।

उपाध्याय

जो, बहुत जैनशास्त्रों के ज्ञाता होकर, संघ में पठन-पाठन के अधिकारी हुए हैं तथा जो समस्त शास्त्रों का सार, आत्मस्वरूप में एकाग्रता है; - ऐसा जानकर

मुख्यत: तो उसमें लीन रहते हैं, कभी किसी कषायांश के उदय से यदि उपयोग वहाँ स्थिर न रहे, तो उन शास्त्रों को स्वयं पढ़ते हैं, औरों को पढ़ाते हैं—वे उपाध्याय हैं। ये मुख्यत: द्वादशांग के पाठी होते हैं।

उपाध्यायों के 11 अंग तथा 14 पूर्व के ज्ञानरूप 25 गुण होते हैं।

साधु

आचार्य, उपाध्याय को छोड़कर, अन्य समस्त जो मुनिधर्म के धारक हैं और आत्मस्वभाव को साधते हैं, बाह्य 28 मूलगुणों को अखण्डित पालते हैं, समस्त आरम्भ और अन्तरंग व बहिरंग परिग्रह से रहित होते हैं, सदा ज्ञान-ध्यान में लवलीन रहते हैं, सांसारिक प्रपंचों से सदा दूर रहते हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं।

इस प्रकार पंच परमेष्ठी का स्वरूप वीतराग-विज्ञानमय है; अत: वे पूज्य हैं। **हमें भी निज-स्वभाव का साधन करके, ऐसी दशा की प्राप्ति करनी है।**

अरहंत सिद्ध सूरि उपाध्याय साधु सर्व,
अर्थ के प्रकाशी मांगलीक उपकारी हैं।
तिनको स्वरूप जानि राग तैं भई जो भक्ति
काय को नमाय स्तुति को उचारी है॥
धन्य-धन्य तुम ही से काज सब आज भये,
कर जोरि बारंबार वंदना हमारी है।
मंगल कल्याण सुख ऐसौ हम चाहत हैं,
होहु मेरी ऐसी दशा, जैसी तुम धारी है॥

(पण्डित टोडरमलजी)

प्रश्न —

1. पंच परमेष्ठी किन्हें कहते हैं ?
2. अरहन्त और सिद्ध परमेष्ठियों का स्वरूप बतलाइए एवं उनका अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. सामान्य से साधुओं का स्वरूप बताकर, आचार्य साधुओं और उपाध्याय साधुओं का स्वरूप बतलाइए।

जैन साहित्य से प्रेरणा

केशरियाजी जैन तीर्थक्षेत्र में एक जैन सज्जन ने छहढाला पुस्तक आचार्य विनोबाभावे को यह कहकर भेंट में दी कि इसमें जैनधर्म का सार भरा है। आचार्य विनोबा ने उसे पढ़ा तथा 'जल मृतिका बिन और नाहीं कछु गहे अदत्ता।' इस छन्द को पढ़कर बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की। उन्हें इस छन्द ने कुछ चिंतन करने को बाध्य कर दिया कि जल और मिट्टी पर किसी का अधिकार नहीं है। तभी से विनोबा को भूदानयज्ञ (आन्दोलन) की प्रेरणा मिली।

प्रेरक साहित्य के अध्ययन से कभी-कभी जीवन की दिशा बदल जाती है।

पाठ 3

जैन गृहस्थ के अष्ट मूलगुण

प्रबोध- क्या हो रहा है भव्य? इस समय चौके में क्या कर रहे हो? अब तो सूर्यास्त हो चुका है।

भव्य - मैं तो अभी भोजन करूँगा....

प्रबोध- हैं... क्या आप जानते नहीं कि हम जैन लोगों को आठ मूलगुण का पालन अनिवार्य है।

भव्य - मैं कब मना करता हूँ? मैंने तो आज तक तीन मकार (मद्य-मांस-मधु) और पंच उदुम्बर फलों को देखा तक नहीं है; सेवन का तो सवाल ही नहीं है।

प्रबोध- भाई भव्य! आठ मूलगुण का वर्णन, आचार्यों और विद्वानों ने अलग-अलग रूप से किया है। किसी एक ही का कथन सत्य समझकर, अन्य का निषेध करना, उचित नहीं।

भव्य - मैं समझा नहीं।

प्रबोध- भाई! मद्य, मांस, मधु तथा पंच उदुम्बर फल का त्याग - ये आठ मूलगुण स्थूलदृष्टि से बताए गए हैं, पर सूक्ष्मदृष्टि से और भी कथन हैं।

भव्य - वे क्या?

प्रबोध- 1. पाँच उदुम्बर फल का त्याग, 2. मद्य-त्याग, 3. मांस-त्याग, 4. मधु -त्याग, 5. जीव-दया का पालन, 6. नित्य देव-दर्शन, 7. पानी छानकर सेवन करना और....

भव्य – और क्या..... ?

प्रबोध– और रात्रिभोजन का त्याग।

भव्य – क्या आप इन्हें थोड़ा समझा सकते हैं ?

प्रबोध – सुनो! जिन फलों में अनन्त सूक्ष्म जीव तथा चलते-फिरते अनेकानेक स्थूल त्रसजीव होते हैं, उन्हें **उदुम्बर फल** कहते हैं। बरगद, पीपल,

पाकर, ऊमर और कठूमर – ये पाँच उदुम्बर फल कहलाते हैं। इनका भक्षण हिंसामय होने से, इनका भक्षक सम्यग्दर्शन का पात्र नहीं होता।

मद्य अर्थात् शराब। शराब, पदार्थों को सड़ाकर बनाई जाती है, सड़ाते समय असंख्य जीवों का घात होता है। इस प्रकार यह हिंसामूलक तो है ही; इसके सिवाय नशाकारक होने से मनुष्य की बुद्धि और विवेक भी नष्ट कर देती है। धन, इज्जत तथा कुटुम्बीजनों से भी हाथ धोना पड़ता है। शराबी के आत्मकल्याण के सभी अवसर समाप्त हो जाते हैं।

मांस – त्रसजीव के शरीर को मांस कहते हैं। मांस-सेवन में जिस जीव का मांस है, उसका तो घात होता ही है, पर साथ-साथ मांस में उस पशु की ही जातिवाले असंख्य त्रसजीव सतत उत्पन्न होते रहते हैं। ऐसे क्रूर तथा निर्दयी जीव के, आत्मकल्याण के समस्त अवसर समाप्त हो जाते हैं।

मधु अर्थात् शहद। मधु स्वयं फूलों का रस होने से, विषय-वासनाओं को बढ़ानेवाला है तथा फूल स्वयं अनन्त वनस्पतिकायिक जीवों का और त्रसजीवों का घर होने से, हिंसामय, अत्यन्त अपवित्र पदार्थ है। यह मधु-मक्खियों का उगाल है। मधु-मक्खियाँ, मल-मूत्र भी इसी में विसर्जित करती हैं। मधु-छत्तों में छोटी-छोटी मधु मक्खियाँ भी रहती हैं और असंख्य त्रसजीव सतत पैदा होते रहते हैं, मरते हैं। कभी-कभी तो शहद इकट्ठा करनेवाले इन छत्तों को कपड़े के समान निचोड़ते हैं, जिससे असंख्य त्रसजीव मर जाते हैं।

जीवदया का पालन - 'प्रेमभाव हो सब जीवों पर', ऐसा हम कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि मन-वचन-काय से हमारे माध्यम से किसी को कष्ट नहीं होना चाहिए। हमारे घर-गृहस्थी के कार्य में सदा हमें यत्नाचारप्रवृत्ति रखना चाहिए। नीचे देखकर चलना, वस्तु को देखकर उठाना-रखना आदि सब जीवदया है।

रात्रिभोजन त्याग - सूर्योदय के पूर्व और सूर्यास्त के बाद जीवों का विशेष संचार होने से, इस समय भोजन करने में **द्रव्यहिंसा** के साथ-साथ गृद्धता होने से, **भावहिंसा** भी होती है। शाकाहार

छोड़कर, मांसाहार करने में जो दोष है, वही दोष, दिन का भोजन छोड़कर, रात्रिभोजन करने में है।

नित्य-देवदर्शन - हम किसी भी चीज़ का उद्घाटन, मंगल कार्य से करते हैं। सुबह-सुबह जैसे हम दर्पण में देखकर अपना रूप सँवारते है; उसी प्रकार हमें अपने आदर्श, भगवान को देखकर, अपनी पामर अवस्था को छोड़ने की भावना होती है। पूरा दिन शुभविकल्पों में ही बीतता है। लोक में भी कहते हैं न, कि 'न जाने सुबह-सुबह किसका मुँह देख लिया, दिन खराब जा रहा है'; उसी प्रकार भगवान को देखकर, भगवान होने की भावना होती रहती है।

पानी छानकर सेवन करना - जैनी, अनछने पानी की एक बूँद भी काम में नहीं लेता; पीने में, नहाने में, धोने में, छने ही पानी का प्रयोग करता है। अनछने पानी में असंख्यात त्रस तथा असंख्य स्थावर जीव होते है। उसे छानने से त्रसजीव छन जाते हैं, जिससे हमें मांस-सेवन का दोष नहीं आता।

भव्य - अच्छा.... अब समझा। तभी तो कहते हैं न, आर्ष-वचनों में सन्धि बैठाना चाहिए; उसका विघटन नहीं करना चाहिए।

प्रबोध- अब समझे.... जिनशासन गम्भीर है, उसे समझने में गलती नहीं होना चाहिए।

भव्य – अच्छा, आठ मूलगुण का और भी कोई वर्णन है ?

प्रबोध– शाबास। अब तुम पारखी बने। मैं तुम्हें फिर कभी बताऊँगा। अभी संक्षेप में समझो कि तीन मकार का त्याग तथा पाँच अणुव्रत का पालन, ये भी आठ मूलगुण बताए गए हैं। ये सब प्रत्येक जैन में होने अनिवार्य ही हैं।

शिक्षा – आचारपक्ष के बिना, विचारपक्ष निरर्थक ही है; असम्भव है। 'मूले नष्टे कुतो शाखा' अर्थात् मूल (पात्रता) के अभाव में, पेड़ की शाखादि (सम्यग्दर्शनादि) की उत्पत्ति असम्भव है।

प्रश्न —

1. मद्य–त्याग, मांस–त्याग और मधु–त्याग को स्पष्ट कीजिए।
2. पंच उदुम्बर फल कौन–कौन से हैं और उन्हें क्यों नहीं खाना चाहिए ?

क्या आवश्यकता ?

- ☞ जिस मनुष्य के पास क्षमा हो, उसे अपनी रक्षा के लिए जिरहबख्तर (सुरक्षा कवच) की क्या आवश्यकता है ?
- ☞ जिस मनुष्य के अंदर गुस्सा हो, उसे दुश्मनों की क्या आवश्यकता है ?
- ☞ जिस मनुष्य के स्नेह करनेवाला मित्र हो, उसे गुणकारी दवा की क्या आवश्यकता है ?
- ☞ जिस मनुष्य के पास सद्विद्या हो, उसे धन की क्या आवश्यकता है ?
- ☞ जिस मनुष्य की अपकीर्ति फैल गई हो, उसे मौत की क्या आवश्यकता है ?
- ☞ जिस मनुष्य के पास शील हो, उसे आभूषणों की क्या आवश्यकता है ?
- ☞ जिस मनुष्य के पास संतोष हो, उसे बाह्य सामग्री की क्या आवश्यकता है ?
- ☞ जिस मनुष्य के अंदर किसी के प्रति शत्रुता हो, उसे जहर की क्या आवश्यकता है ?
- ☞ जिस मनुष्य के पास ईमानदारी हो, उसे चापलूसी की क्या आवश्यकता है ?
- ☞ जिस मनुष्य का मन निर्मल हो, उसे तीर्थयात्रा की क्या आवश्यकता है ?

पाठ 4

इन्द्रियाँ

बेटी – माँ! पिताजी, जैनसाहब क्यों कहलाते हैं ?

माँ – जैन हैं, इसलिए वे जैन कहलाते हैं। जिन का भक्त, सो जैन या जिन-आज्ञा को माने, सो जैन। जिनदेव के बताए मार्ग पर चलनेवाला ही सच्चा जैन है।

बेटी – और जिन क्या होता है ?

माँ – जिसने मोह-राग-द्वेष और इन्द्रियों को जीता, वही जिन है।

बेटी – इन्द्रियाँ क्या हमारी शत्रु हैं, जो उन्हें जीतना हैं ? वे तो हमारे ज्ञान में सहायक हैं। शरीर के जो चिह्न, आत्मा को ज्ञान कराने में सहायक हैं, वे ही तो इन्द्रियाँ हैं।

माँ – हाँ बेटी ! संसारी जीव को इन्द्रियाँ, ज्ञान के काल में भी निमित्त होती हैं, पर एक बात यह भी तो है कि ये विषय-भोगों में उलझाने में भी तो निमित्त हैं; अत: इन्हें जीतनेवाला ही भगवान बन पाता है।

बेटी – इन्द्रियों के भोगों को छोड़ना चाहिए, इन्द्रियज्ञान को तो नहीं ?

माँ – तुम जानती हो कि इन्द्रियाँ कितनी हैं और किस ज्ञान में निमित्त हैं ?

बेटी – हाँ! वे पाँच होती हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण।

माँ – अच्छा बोलो ! स्पर्शनइन्द्रिय किसे कहते हैं ?

बेटी – जिससे छू जाने पर, हल्का-भारी, रूखा-चिकना, कड़ा-नरम और ठण्डा -गरम का ज्ञान होता है, उसे स्पर्शन-इन्द्रिय कहते हैं।

स्पर्शन-इन्द्रिय

रसना-इन्द्रिय

माँ – जानता तो आत्मा ही है न ?

बेटी – हाँ! हाँ!! इन्द्रियाँ तो निमित्तमात्र हैं। इसी प्रकार जिससे खट्टा, मीठा, कड़वा, कषायला और चरपरा स्वाद जाना जाता है, वही रसना-इन्द्रिय है। जीभ को ही रसना कहते हैं।

माँ – और स्पर्शन क्या है ?

बेटी – स्पर्शन तो सारा शरीर ही है।

जिससे हम सूँघते हैं, वह नाक ही घ्राण-इन्द्रिय कहलाती है, यह सुगन्ध और दुर्गन्ध के ज्ञान में निमित्त होती है।

घ्राण-इन्द्रिय

चक्षु एवं श्रोत्र-इन्द्रिय

माँ – और रंग के ज्ञान में निमित्त कौन है ?

बेटी – आँख! इसी को चक्षु कहते हैं। जिससे काला, नीला, पीला, लाल, सफेद आदि रंगों का ज्ञान हो, वही तो चक्षु-इन्द्रिय है और जिनसे हम सुनते हैं, वे ही कान हैं; जिन्हें कर्ण या श्रोत्र-इन्द्रिय कहा जाता है।

माँ – तू तो सब जानती है, पर यह बता कि ये पाँचों ही इन्द्रियाँ किस वस्तु के जानने में निमित्त हुईं ?

बेटी – स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और आवाज को जानने में ही निमित्त हुईं।

माँ – स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण तो पुद्गल के गुण हैं; अतः इनके निमित्त से तो सिर्फ पुद्गल का ही ज्ञान हुआ, आत्मा का ज्ञान तो हुआ नहीं।

बेटी – आवाज का ज्ञान भी तो हुआ।

माँ – वह भी तो पुद्गल की ही पर्याय है। आत्मा तो अमूर्तिक चेतन-पदार्थ है; उसमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द है ही नहीं; अतः इन्द्रियाँ, आत्मा के जानने में निमित्त नहीं हो सकतीं।

बेटी – न हों तो न सही। जिसके जानने में निमित्त हैं, वही ठीक।

माँ – आत्मा का हित तो आत्मा को जानने में है; अतः इन्द्रियज्ञान भी तुच्छ हुआ। जिस प्रकार इन्द्रियसुख (भोग), हेय है; उसी प्रकार मात्र पर को जाननेवाला इन्द्रियज्ञान भी तुच्छ है तथा अतीन्द्रिय आनन्द एवं अतीन्द्रियज्ञान ही उपादेय है।

शिक्षा – जब एक इन्द्रिय को भी अपना काम करने में अन्य इन्द्रिय की आवश्यकता नहीं है, तो आत्मा तो बिल्कुल पृथक् चेतनद्रव्य है; उसकी महत्ता (स्वयंभूता) का क्या कहना ? उसे अपने काम के लिए, इन्द्रियों की आवश्यकता क्यों हो ?

प्रश्न —

1. जैन किसे कहते हैं ?
2. इन्द्रिय किसे कहते हैं ? वे कितनी हैं ? नामसहित बताओ।
3. इन्द्रियाँ, किसे जानने में निमित्त हैं ?
4. क्या इन्द्रियाँ, मात्र ज्ञान में ही निमित्त हैं ?
5. यदि इन्द्रियाँ, ज्ञान में मात्र निमित्त हैं तो जानता कौन है ?
6. इन्द्रियज्ञान तुच्छ क्यों है ?

पाठ 5

भक्ष्य-अभक्ष्य

भव्य — क्यों भाई प्रबोध! कहाँ जा रहे हो? चलो, आज तो चौराहे पर आलू की चाट खाएँगे; बहुत दिनों से नहीं खाई है।

प्रबोध — चौराहे पर और आलू की चाट! हमें कोई भी चीज़ बाज़ार में नहीं खाना चाहिए और आलू की चाट भी कोई खाने की चीज़ है? याद नहीं, कल गुरुजी ने कहा था कि आलू तो अभक्ष्य है?

भव्य — यह अभक्ष्य क्या होता है, मेरी तो समझ में ही नहीं आता। पाठशाला में पण्डितजी कहते हैं—यह नहीं खाना चाहिए, वह नहीं खाना चाहिए। औषधालय में वैद्यजी कहते हैं—यह नहीं खाना, वह नहीं खाना। अपने को तो यह सब पसन्द नहीं। जो मन में आए, सो खाओ और मौज से रहो।

प्रबोध — जो खानेयोग्य, सो भक्ष्य और जो खानेयोग्य नहीं, सो अभक्ष्य। यही तो कहते हैं कि अपने आत्मा को इतना पवित्र बनाओ कि उसमें अभक्ष्य के खाने का भाव (इच्छा) आए ही नहीं। यदि पण्डितजी कहते हैं कि अभक्ष्य का भक्षण मत करो, तो तुम्हारे हित की ही कहते हैं क्योंकि अभक्ष्य खाने से और खाने के भाव से, आत्मा का पतन होता है।

भव्य — कौन-कौन से पदार्थ अभक्ष्य हैं?

प्रबोध — जिन पदार्थों के खाने से त्रसजीवों[१] का घात होता हो या बहुत से स्थावरजीवों[२] का घात होता हो तथा जो पदार्थ भले पुरुषों के सेवन

१.दो इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक के जीव। २. एकेन्द्रिय जीव।

करनेयोग्य न हों या नशाकारक अथवा अस्वास्थ्यकर हों, वे सब अभक्ष्य हैं। इन अभक्ष्यों को पाँच भागों में बाँटा जाता है।

भव्य — कौन-कौन से ?

प्रबोध — 1. त्रसघात, 2. बहुघात, 3. अनुपसेव्य, 4. नशाकारक और 5. अनिष्ट।

जिन पदार्थों के खाने से त्रसजीवों का घात होता हो, उन्हें त्रसघात कहते हैं, जैसे - पंच उदुम्बर फल। इनके मध्य में अनेक सूक्ष्म व स्थूल त्रसजीव पाए जाते हैं, इन्हें कभी नहीं खाना चाहिए।

जिन पदार्थों के खाने से, बहुत (अनन्त) स्थावर-जीवों का घात होता हो, उन्हें बहुघात कहते हैं। समस्त कन्दमूल, जैसे - आलू, गाजर, मूली, शकरकन्द, लहसन, प्याज आदि पदार्थों में अनन्त स्थावर निगोदिया जीव रहते हैं। इनके खाने से अनन्त जीवों का घात होता है; अतः इन्हें भी नहीं खाना चाहिए।

भव्य — अनुपसेव्य ?

प्रबोध — जिनका सेवन, उत्तम पुरुष बुरा समझें, वे लोकनिन्द्य पदार्थ ही अनुपसेव्य हैं, जैसे - लार, मल-मूत्र आदि पदार्थ।

अनुपसेव्य पदार्थों का सेवन, लोकनिन्द्य होने से तीव्र राग के बिना

नहीं हो सकता है; अत: वे भी अभक्ष्य हैं।

भव्य — और नशाकारक ?

प्रबोध — जो वस्तुएँ, नशा बढ़ानेवाली हों, उन्हें नशाकारक अभक्ष्य कहते हैं, जैसे - शराब, अफीम, भांग, गाँजा, तम्बाकू आदि; अत: इनका भी सेवन नहीं करना चाहिए।

तथा जो वस्तु, अनिष्ट (हानिकारक) हो, वह भी अभक्ष्य है क्योंकि नुकसान करनेवाली चीज़ को जानते हुए भी खाने का भाव, अति तीव्र रागभाव हुए बिना नहीं होता; अत: वे भी त्याग करनेयोग्य हैं।

भव्य — अच्छा! आज से मैं किसी भी अभक्ष्यपदार्थ को काम में नहीं लूँगा (भक्षण नहीं करूँगा)। मैं तुम्हारा उपकार मानता हूँ, जो तुमने मुझे अभक्ष्यभक्षण के महापाप से बचा लिया।

शिक्षा - शरीर के सहस्त्र खण्ड होने पर भी, जैनी तो अभक्ष्यभक्षण नहीं करता।

प्रश्न —

1. अभक्ष्य किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार के होते हैं ?
2. अनुपसेव्य से क्या समझते हो ? उसके सेवन से हिंसा कैसे होती है ?
3. किन्हीं चार बहुघात के नाम गिनाइए।
4. नशाकारक अभक्ष्य से क्या समझते हो ?

पाठ 6

अर्थ (वस्तु)- व्यवस्था

इस पाठ में द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप बताया जा रहा है। यह स्वरूप, जैनदर्शन का प्राण है। इसे आत्मसात् करने से समस्त मूलग्रन्थों में प्रवेश सम्भव हो जाता है। जो द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप को जानता है, उसका मोह, क्षय को प्राप्त होता है।

मङ्गलार्थियो, जरा विचार करो! लोग अक्सर यह कहते देखे जाते हैं कि अर्थ-व्यवस्था पूरी तरह से चरमरा गई है और हम बहुत संकट में फँस गए हैं। पर भाई! अर्थ-व्यवस्था अपनी जगह इतनी अनुशासित है कि वह कभी चरामरा ही नहीं सकती।

'अर्थ' अर्थात् द्रव्य; 'अर्थ' अर्थात् गुण तथा 'अर्थ' का मतलब पर्याय भी होता है। द्रव्य, गुण, पर्याय - इन तीनों का वाचक 'अर्थ' ही है। इतना ही नहीं, वरन् तीनों मिलकर भी एक ही अर्थ के अंश हैं अर्थात् द्रव्य, गुण, पर्यायात्मक वस्तु को भी अर्थ कहते हैं।

जो गुण तथा पर्यायों को प्राप्त हो, उसे द्रव्य कहते हैं। '**गुणपर्ययवद् द्रव्यम्**' - ऐसा तत्त्वार्थसूत्र के पाँचवें अध्याय का 38वाँ सूत्र है अर्थात् गुण तथा पर्यायों के पिण्ड को द्रव्य कहते हैं। कहीं पर्याय को गौण करके अथवा गुण में गर्भित करके, '**गुणसमुदायो द्रव्यम्**' ऐसा भी कहा जाता है अर्थात् गुणों के पिण्ड को द्रव्य कहते हैं। इस न्याय से हम गुण को गौण करके अथवा पर्याय में गर्भित करके, पर्यायों के पिण्ड को भी द्रव्य कह सकते हैं। इस प्रकार द्रव्य को अनेकों प्रकार से हम परिभाषित कर सकते हैं।

जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों (प्रदेशों, क्षेत्र) में और उसकी सभी अवस्थाओं (पर्यायों, काल) में रहता है, उसे गुण कहते हैं। जैसे - ज्ञान, आत्मा का गुण है, वह आत्मा के समस्त प्रदेशों (क्षेत्र) में तथा निगोद से लेकर मोक्ष तक की समस्त अवस्थाओं में पाया जाता है; इसीलिए आत्मा को ज्ञानमय कहा जाता है। उसी प्रकार पुद्गल को स्पर्शमय कहा जाता है। ऐसा प्रत्येक द्रव्य में समझना चाहिए।

'द्रव्याश्रया निर्गुणाः गुणाः' - ऐसा तत्त्वार्थसूत्र के पाँचवें अध्याय का 41वाँ सूत्र है। अर्थात् गुण उसे कहते हैं, जो द्रव्य के आश्रय से रहते हों तथा अन्य अनन्त गुणों के आश्रय से नहीं रहते। एक गुण, अन्य गुणस्वरूप नहीं हो सकता। अनन्त गुणों की अपनी-अपनी सत्ताएँ हैं, पर हाँ कभी ये अनन्त गुण, बिखरकर अलग-अलग नहीं हो जाते; सब एक ही द्रव्य में रहते हैं।

दो गुणों में आपस में अविनाभावीसम्बन्ध होता है अर्थात् एक गुण के बिना, अन्य गुण रह ही नहीं सकता। किसी आत्मा में ज्ञान हो और दर्शन न हो, ऐसा हो नहीं सकता और किसी आत्मा में दर्शन हो और ज्ञान न हो, ऐसा भी हो नहीं सकता। क्योंकि ज्ञान और दर्शन का आपस में अविनाभावीसम्बन्ध है। इसी प्रकार स्पर्श, रस आदि में भी समझना चाहिए। गुण सहभावी होते हैं। वे साथ-साथ वर्तते हैं। गुण, यह द्रव्य का वैभव है।

गुण में होनेवाले प्रति समय के परिवर्तन (परिणमन) को पर्याय कहते हैं। पर्याय, यह गुण का कार्य है, अवस्था है, दशा है। **'तद्भावः परिणामः'** - ऐसा तत्त्वार्थसूत्र के पाँचवें अध्याय का 42वाँ सूत्र है। पर्याय, व्यक्त होती है, प्रगट होती है। द्रव्य तथा गुण व्यक्त (प्रगट, प्रसिद्ध) नहीं होता। द्रव्य को तथा गुण को, पर्याय ही तो प्रसिद्ध करती है। हमें वेदन भी पर्याय ही का होता है; द्रव्य तथा गुण का नहीं।

एक पर्याय की अवधि, एक समय है। एक पर्याय अन्य पर्यायरूप नहीं होती। मालारूप में, एक के बाद, दूसरी पर्याय आती है। आगे-पीछे की पर्याय, पूर्ण

स्वतन्त्र होते हुए भी, उनमें कारण-कार्य का सम्बन्ध भी होता है। ये पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं, क्रमभावी होती हैं। पर्याय, द्रव्य का परिचय कराती है। द्रव्य, गुण तथा पर्याय में संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन की अपेक्षा से भेद होने पर भी, प्रदेश अपेक्षा से भेद नहीं है; अभेद है।

उदाहरण के रूप में हम समझते हैं। कच्चे आम में स्पर्श, रसादि अनन्त गुण हैं। इसके स्पर्शगुण की कठोर पर्याय का अभाव होकर, थोड़े ही काल में (पकने के बाद) नरम अवस्था आएगी। खट्टी पर्याय का व्यय (अभाव) होकर, मीठी पर्याय का उत्पाद होता है। दोनों गुणों (स्पर्श तथा रस) की पर्यायें एक साथ बदलीं। इसी प्रकार एक समय में, अनन्त गुणों का एक-एक कार्य और इस प्रकार एकसाथ अनन्त कार्य होते हैं।

आत्मा का श्रद्धागुण, मिथ्यादर्शन से पलटकर सम्यग्दर्शनरूप हो जाता है। ज्ञानगुण के मिथ्याज्ञानरूप परिणमन का व्यय होकर, सम्यग्ज्ञानरूप हो जाता है। द्रव्य और गुण शाश्वत हैं और पर्यायें बदलती हैं। हमारे दोनों हाथों में लड्डू हैं। जो अच्छी चीज़ है और हम उसे बनाए भी रखना चाहते हैं, वह तो शाश्वत ही है और जिस संसार, बन्धन की पर्याय को हम हटाना चाहते हैं, वह स्वयं ही नश्वर है। यह सिद्धान्त, निर्भार करनेवाला है।

शिक्षा - द्रव्य, गुण, पर्यायात्मक हमारी आत्म-वस्तु ही हमारा निज-निवास है। पर का मुझमें और मेरा पर में कुछ भी हस्तक्षेप असम्भव है।

प्रश्न —

1. द्रव्य किसे कहते हैं ?
2. गुण किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार के होते हैं ?
3. पर्याय किसे कहते हैं ?
4. द्रव्य, गुण, पर्याय समझने से क्या लाभ है ?

पाठ 7

तीर्थंकर नेमिनाथ

मङ्गलार्थी बच्चो! वास्तव में कोई भी जीव, जन्म से भगवान नहीं होता है, जन्म के समय तो सभी बालक ही होते हैं। जो जीव उसी भव में तीर्थंकर होनेवाले होते हैं, उन्हें गर्भ के समय से ही उपचार से तीर्थंकर कह दिया जाता है। इसी उपचार के बल पर, तीर्थंकर गर्भ में आए, तीर्थंकर का जन्म हुआ, तीर्थंकर ने दीक्षा ली इत्यादि व्यवहार, लोक में प्रचलित हैं। वास्तव में तीर्थंकर तो, वे आत्मसाधना की पूर्णता होने पर वीतरागी, सर्वज्ञ अवस्थामय पूर्णता (पूर्ण शुद्धि) होने पर तेरहवें गुणस्थान में होते हैं।

आज से करीब पाँच हजार वर्ष पूर्व, हरिवंश में अंधकवृष्टि नाम के राजा हुए। उनके दस पुत्र थे। उनमें सबसे बड़े समुद्रविजय और सबसे छोटे वसुकुमार थे। श्री नेमिनाथ, समुद्रविजय तथा शिवादेवी के पुत्र थे और श्रीकृष्ण, वसुकुमार के पुत्र थे। इस न्याय से श्रीकृष्ण तथा नेमिकुमार चचेरे भाई थे। अंधकवृष्टि के कुन्ती और माद्री नाम की दो पुत्रियाँ थीं, उनके पुत्र, पाण्डव थे। इस प्रकार नेमि, कृष्ण और पाण्डव मामा-बुआ के बेटे थे।

बालक नेमिनाथ का जन्म, शौरीपुर में हुआ था, उनकी आयु एक हजार वर्ष की थी। बचपन से ही वे अतुल्य बल के धनी, धीर, गम्भीर, आत्मानुभवी पुरुष थे। एक बार राजसभा में यह चर्चा चल पड़ी कि राज्य में सबसे बलवान कौन है? श्रीकृष्ण त्रिखण्डाधिपति थे, उनमें हजार सिंहों का बल था। किसी ने बलभद्र के अधिक बलवान होने की बात कही। पर बलभद्र ने हँसते-हँसते नेमिनाथ की तरफ इशारा करते हुए कहा कि नेमिनाथ ही सबसे बलवान हैं। वे चाहें तो अपनी अंगुली से सुमेरु को भी पलट सकते हैं।

श्रीकृष्ण को अपनी ताकत पर गर्व था। वे इस बात को नहीं पचा पाए; इसलिए नेमि-कृष्ण दोनों के बल की परीक्षा हुई और नेमिकुमार के बल की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध हुई।

एक बार अपनी भाभियों (सत्यभामा, रुक्मणी आदि) द्वारा व्यंग किए जाने पर, नेमिनाथ ने, कृष्ण के बल का मद उतारना निश्चित किया। उन्होंने कृष्ण का सुदर्शनचक्र एक हाथ की अंगुली पर रखकर घुमाया और दूसरे हाथ में दैवी शंख लेकर, उसे नासिका द्वारा जोर से फूँक दिया। उस शंखध्वनि से द्वारिका में हाहाकार मच गया, समुद्र में लहरें उछलने लगीं। कृष्ण, विचार में पड़ गए कि मेरे अलावा दूसरा शूरवीर कौन हो सकता है ? नेमिनाथ को देखते ही, वे नेमिनाथ के बल की महिमा समझ गए।

जवान होने पर, नेमिनाथ की सगाई, जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की पुत्री, राजुल के साथ निश्चित हुई। नेमिनाथ की बारात, जूनागढ़ जा रही थी। जैसे - किसी नेता आदि के आगमन पर सहज ही सड़क का यातायात सुव्यवस्थित और निर्विघ्न करने के लिए, उसके दोनों ओर बल्लियाँ बाँध दी जाती हैं; उसी प्रकार राजकुमार नेमिनाथ की विशालकाय बारात को निकलने के लिए सड़कों को, पशुओं से निर्विघ्न करने के लिए, उनके दोनों ओर बल्लियाँ बाँध दी गई थीं। इस कारण पशुओं का आना-जाना रुक जाने से, वे चिल्ला रहे थे। करुणा हृदयी

राजकुमार नेमिनाथ को, मानव की स्वार्थपरता देखकर वैराग्य हुआ। आप गिरनारपर्वत पर जाकर, नग्न दिगम्बर साधु हो गए।

जैसे ही यह खबर राजुल ने सुनी तो उसे भी वैराग्य हुआ और अबला पर्याय होते हुए भी, राजुल ने आत्मबल की पराकाष्ठा से, आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। नेमिनाथ लगातार छप्पन दिन तक पूर्ण आत्मस्थिरता का पुरुषार्थ करने लगे और इसी के फलस्वरूप छप्पनवें दिन, आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। देवों ने आकर समवसरण की रचना की, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण भारतवर्ष में विहार करते हुए लगभग सात सौ वर्ष तक दिव्यध्वनि द्वारा आपका उपदेश होता रहा। एक हजार वर्ष की आयु पूर्ण होने पर, गिरनारपर्वत से ही आपका निर्वाण हुआ और आप सिद्ध परमेष्ठी हो गए।

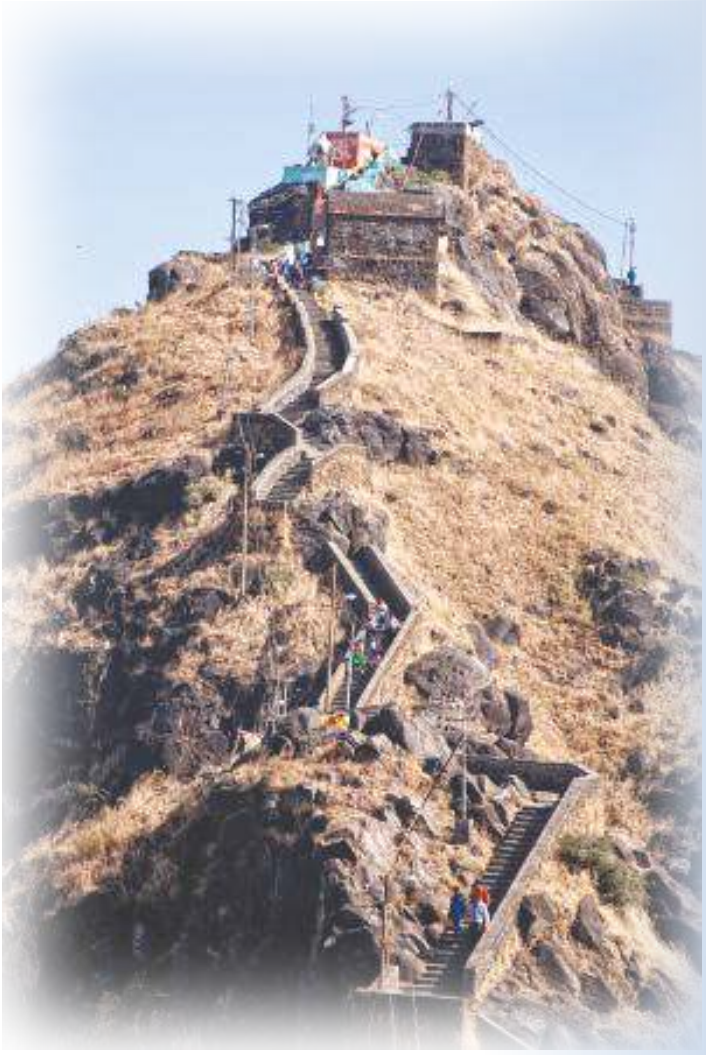

गिरनारजी सिद्धक्षेत्र सौराष्ट्र प्रान्त के जूनागढ़नगर के समीप स्थित विशालकाय पर्वत है। उसका दूसरा नाम ऊर्जयन्तगिरि भी है। श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्नकुमार, शम्बुकुमार आदि की भी यह सिद्धभूमि है। राजुल की भी

यह दीक्षाभूमि तथा तपोभूमि है। इस प्रकार सम्मेदशिखरजी के समान गिरनारपर्वत भी एक महान तीर्थ है।

एक तरफ धर्मचक्र की धुरीस्वरूप नेमिकुमार ने, उत्तुंग पुरुषार्थ करके, भोगमयी संसार का त्याग करके, दुर्लभ संयम का मार्ग अंगीकार करके, ब्रह्मचर्य का अलख जगाया और दूसरी तरफ राजुल ने भी आर्तध्यान का मार्ग न अपनाकर, 'जो समझ तुमरी, सोई समझ हमरी' का मार्ग अपनाया। पत्नित्व नहीं सही, शिष्यत्व अंगीकार कर लिया।

प्रश्न—

1. भगवान नेमिनाथ का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. भगवान नेमिनाथ की तपोभूमि और निर्वाणभूमि का परिचय दीजिए।

यदि कोई न उठाये तो...

मति, खिलौना के लिए मचल रही थी, इसीलिए तो वह बाजार आई थी। दीदी ने समझाते हुए उसे बाद में खिलौना लेने को कहा, पर मति तो जिद की पक्की थी; अचानक उसकी नजर दो के नोट पर पड़ी जो दो कदम पर पड़ा था, उसने जल्दी से उठा लिया और दीदी से बोली – दीदी! अब खरीद दो, यह पैसे हैं। समझाते हुए दीदी ने कहा – देखो, दूसरे के पैसे उठाने से चोरी का पाप लगता है। अत: तुम इन्हें वहीं डाल दो, जिसके होंगे उसे मिल जाएँगे।

मगर दीदी इन्हें दूसरा भी तो उठा लेगा – मति ने कहा।

नहीं, दूसरे व्यक्ति ने भी यही सोचा तो वह भी नहीं उठायेगा। तो तीसरा व्यक्ति उठा लेगा – मति ने फिर कहा।

उसने भी न उठाये तो उसे ही मिल जाएँगे जिसके ये पैसे गिर गए हैं।

पर दीदी कोई न कोई तो उठा ही लेगा – मति ने अपनी छोटी बुद्धि पर पूरा जोर देकर कहा।

यदि कोई भी न उठाये – तब तो जिसके हैं, उसे ही मिलेंगे न ?

मति की समझ में बात आ गयी और पैसे डालते हुए बोली हाँ दीदी! सच! क्या कभी ऐसा भी होगा... ?

पाठ 8

जिनवाणी स्तुति

वीर हिमाचलतैं निकसी, गुरु गौतम के मुख कुंड ढरी है।
मोह महाचल भेद चली, जग की जड़तातप दूर करी है॥
ज्ञान पयोनिधि माँहि रली, बहु भंग तरंगनिसों उछरी है।
ता शुचि शारद गंगनदी प्रति, मैं अंजुलि कर शीश धरी है॥1॥

या जगमंदिर में अनिवार, अज्ञान अंधेर छयो अति भारी।
श्री जिन की धुनि दीपशिखा-सम, जो नहिं होत प्रकाशन-हारी॥

तो किस भाँति पदारथ पाँति, कहाँ लहते रहते अविचारी।
या विधि सन्त कहें धनि हैं, धनि हैं जिन वैन बड़े उपकारी ॥2 ॥

यह जिनवाणी की स्तुति है। इसमें दीपशिखा के समान अज्ञानान्धकार का नाश करनेवाली, पवित्र जिनवाणीरूपी गंगा को नमस्कार किया गया है।

जिनवाणी अर्थात् जिनेन्द्र भगवान द्वारा दिया गया तत्त्वोपदेश, उनके द्वारा बताया गया मुक्ति का मार्ग।

हे जिनवाणीरूपी पवित्र गंगा! तुम महावीर भगवानरूपी हिमाचलपर्वत से प्रवाहित होकर, गौतम गणधर के मुखरूपी कुण्ड में आई हो। तुम मोहरूपी महान पर्वतों को भेदती हुई, जगत के अज्ञान और ताप (दु:खों) को दूर कर रही हो। सप्तभंगीरूप नयों की तरंगों से उल्लसित होती हुई, ज्ञानरूपी समुद्र में मिल गई हो।

ऐसी पवित्र जिनवाणीरूपी गंगा को मैं अपनी बुद्धि और शक्ति अनुसार, अंजुलि में धारण करके, शीश पर धारण करता हूँ ॥ 1 ॥

इस संसाररूपी मन्दिर में, अज्ञानरूपी घोर अन्धकार छाया हुआ है। यदि उस अज्ञानान्धकार को नष्ट करने के लिए, जिनवाणीरूपी दीपशिखा नहीं होती, तो फिर तत्त्वों का वास्तविक स्वरूप किस प्रकार जाना जाता? वस्तुस्वरूप अविचारित ही रह जाता। अत: सन्त कवि कहते हैं कि जिनवाणी बड़ी ही उपकार करनेवाली हैं, जिनकी कृपा से हम तत्त्व का सही स्वरूप समझ सके ॥ 2 ॥

मैं, उन जिनवाणी को बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

प्रश्न —

1. जिनवाणी स्तुति की कोई चार पंक्तियाँ अर्थसहित लिखिए।

सिद्धान्त-वाक्य

1. जिसने मोह-राग-द्वेष और इन्द्रियों को जीता, सो जिन है।
2. जिन का भक्त या जिन आज्ञा को माने, सो जैन है।
3. ये इन्द्रियाँ, मात्र पुद्गल के ज्ञान में ही निमित्त हैं; आत्मज्ञान में नहीं।
4. इन्द्रियसुख की भाँति, इन्द्रियज्ञान भी तुच्छ है। अतीन्द्रियसुख और अतीन्द्रियज्ञान ही उपादेय है।

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझ में कुछ गन्ध नहीं।
मैं अरस, अरूपी अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं॥

मैं रंग-राग से भिन्न, भेद से भी मैं भिन्न निराला हूँ।
मैं हूँ अखण्ड, चैतन्यपिण्ड, निज रस में रमनेवाला हूँ॥

मैं ही मेरा कर्ता-धर्ता, मुझमें पर का कुछ काम नहीं।
मैं मुझमें रहनेवाला हूँ, पर में मेरा विश्राम नहीं॥

मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, एक, पर-परणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ॥

तीर्थधाम चिदायतन

निर्माणाधीन तीर्थधाम चिदायतन के विशाल संकुल में स्थापित,
श्री शान्तिनाथ अस्थायी जिनालय के दर्शन हेतु अवश्य पधारें।

पंजीकृत कार्यालय :
श्री शान्तिनाथ-अकम्पन-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट,
'विमलांचल', हरीनगर, अलीगढ़-202001 (उत्तरप्रदेश) भारत।
Ph: 0571-2410010 / 11 / 12
E-mail: info@mangalayatan.com | www.mangalayatan.com

निर्माण-कार्यालय एवं स्वागत कक्ष :
तीर्थधाम चिदायतन
हस्तिनापुर, मेरठ-250404 (उत्तरप्रदेश) भारत।
Ph: +91 9412749670 E-mail: info@chidayatan.com | www.chidayatan.com

निर्माणस्थल :
तीर्थधाम चिदायतन
दूसरी नसियाँजी से आगे,
हस्तिनापुर, मेरठ-250404 (उत्तरप्रदेश) भारत।
(सम्पर्क : +91 9837079003, श्री मुकेशचन्द जैन, मेरठ)

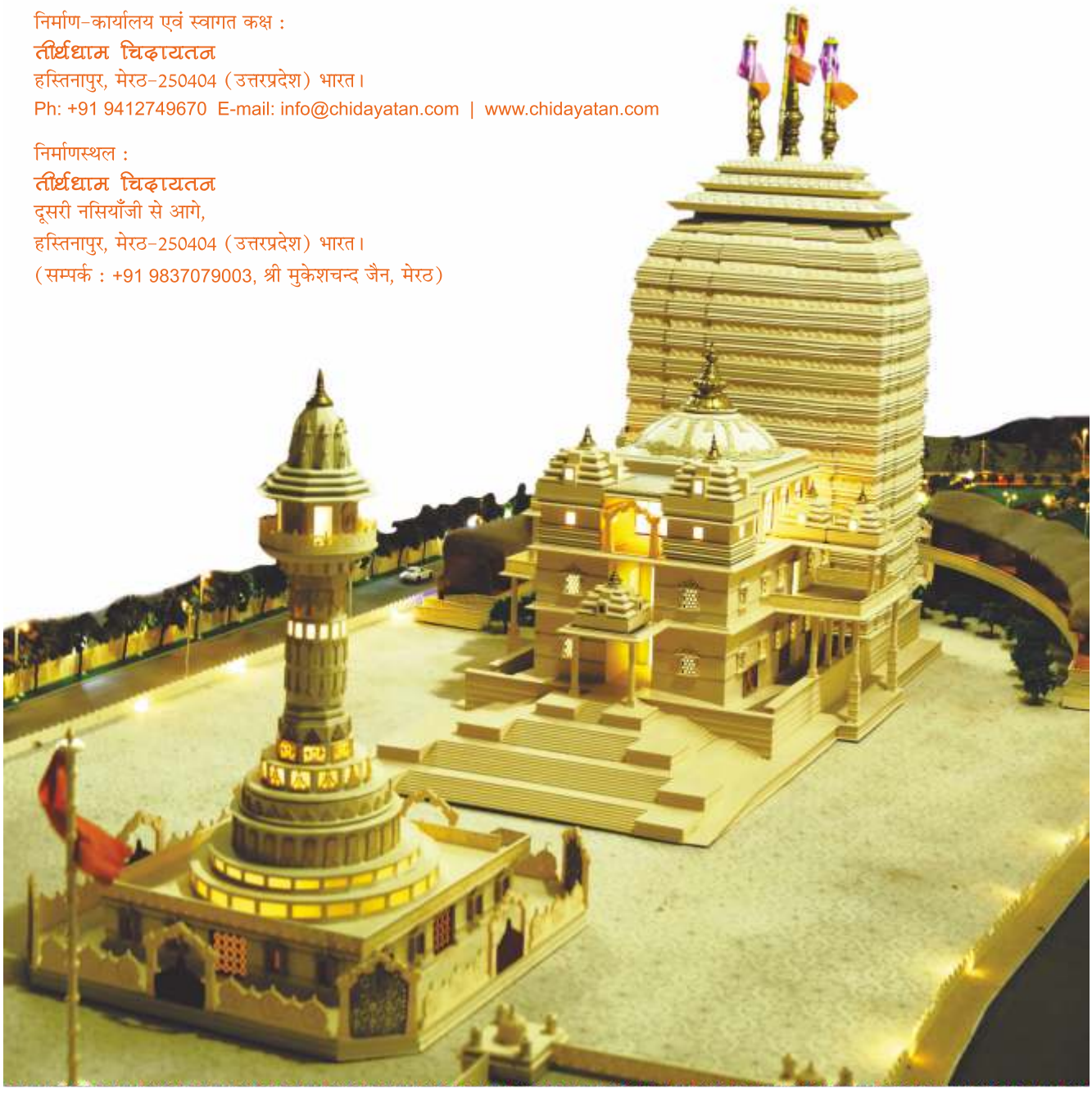

भारत में उत्तरप्रदेश प्रांत की हृदयस्थली अलीगढ़ में निर्मित २१ वीं शती का
विशुद्ध जिनायतन संकुल एवं समाजसेवा का उत्कृष्ट संस्थान

तीर्थधाम मङ्गलायतन

प्रमुख दर्शनीय स्थल:

- कृत्रिम कैलाशपर्वत पर भगवान आदिनाथ मन्दिर एवं चौबीस तीर्थंकरों की निर्वाणस्थलियां-
- कैलाशपर्वत, सम्मेदशिखर, गिरनारगिर, चम्पापुर, पावापुरी एवं सोनागिरी व स्वर्णपुरी सोनगढ़ की विधिपूर्वक स्थापनाओं के दर्शन
- भगवान महावीर मन्दिर
- भगवान बाहुबली मन्दिर
- पंडित दौलतराम जिनवाणी मन्दिर एवं जिनवाणी संरक्षण केंद्र
- आचार्य समन्तभद्र आत्मचिंतन केंद्र
- धन्य मुनिदशा
- आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप एवं शोध संस्थान
- भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन

मङ्गल प्रकल्प:

email : info@mangalayatan.com
website: www.mangalayatan.com

मूल्य 25/-